यीशु और स्त्रियाँ

बेन विदरिंगटन III (Ben Witherington III) · जर्मन अनुवाद: Hans-Jörg Ronsdorf · मई 2021 · अक्टूबर 2026 में संशोधित

हाल के समय में कहा गया है कि यीशु एक "क्रांतिकारी नारीवादी" थे। वे ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने उस पारंपरिक पितृसत्तात्मक ढाँचे को जान-बूझकर कमज़ोर किया, जो इतने स्पष्ट रूप से पुराने नियम की संस्कृति और धर्म का अंग था। बहुतों का दावा है कि उनकी अपनी शिक्षा और उनकी जीवन-शैली ऐसी थी कि केवल पति-पत्नी संबंधों का एक **समानतावादी दृष्टिकोण** और चेलों के रूप में पुरुष और स्त्री की भूमिकाओं का समान अधिकार वाला दृष्टिकोण ही उनके विश्व-दृष्टिकोण से मेल खाते हैं। स्त्रियों के विषय में यीशु के विचारों के विश्लेषण का यह तरीक़ा विद्वानों और सामान्य लोगों दोनों के बीच चारों सुसमाचारों की संबंधित सामग्री की "सही" व्याख्या के रूप में अधिकाधिक स्थापित हो गया है। **फिर भी शायद यह पूछना उचित है कि क्या यह यीशु और उनके विचारों को मसीही समुदाय में स्त्रियों के स्थान के विषय में हमारी अपनी आधुनिक चिंताओं के रूप में ढालने का एक और प्रयास तो नहीं है।**

कितनी ही बार हम बाइबल के पाठ के पास एक एजेंडे (पहले से तय धारणा या पूर्व-निर्णय) के साथ आते हैं, और इसमें आश्चर्य नहीं कि हमें अक्सर वही मिलता है, जिसकी हम खोज करते हैं! हम प्रमाणों का प्रयोग ऐसे ढंग से करते हैं, जो कुछ हद तक सत्य को स्पष्ट करता है और कुछ हद तक सत्य को धुंधला कर देता है। और फिर अक्सर पाठ के विषय में हमारी पूर्व-धारणाएँ और पाठ के साथ व्यवहार करने का हमारा ढंग यह तय करते हैं कि हमें किस प्रकार के परिणाम मिलेंगे। पद्धति, जैसा रॉबर्ट फ़ंक (Robert Funk) ने एक बार कहा था, कोई तटस्थ जाल नहीं है। वह वही पकड़ती है, जिसे पकड़ने के लिए वह बनाई गई है।

यीशु की सेवकाई में स्त्रियों के प्रश्न के संबंध में, पाठ में कोई एजेंडा पढ़ डालने की समस्याओं से बचने का एकमात्र मार्ग संबंधित सामग्री का सावधान, व्यापक, ऐतिहासिक अध्ययन है। जब तक हम यह जाँच न लें कि पाठ का उसके मूल ऐतिहासिक परिवेश में उसके लेखक और उसके श्रोताओं के लिए क्या अर्थ था, तब तक हमें यह जानने का दावा नहीं करना चाहिए कि हमारे लिए उसका क्या अर्थ है। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि पाठ का आज कोई ऐसा अर्थ नहीं हो सकता, जो उस बात के विपरीत हो, जो लेखक उस समय कहना चाहता था। इन विचारों को ध्यान में रखते हुए आइए हम संबंधित सामग्री में से कुछ पर विचार करें, जिसमें मैं अपनी मोनोग्राफ़ "Women in the Ministry of Jesus" (Cambridge: Cambridge University Press, 1984) की सामग्री के केवल एक भाग का सारांश दे सकता हूँ।

परमेश्वर के राज्य के लिए नपुंसक

यीशु परमेश्वर के राज्य की घोषणा करने आए, एक ऐसी घटना, जिसका प्रभाव स्त्रियों पर पड़ा, परन्तु उन्होंने इस प्रश्न पर सीधे बात नहीं की कि इस राज्य में, और विश्वासियों के उनके समुदाय में, स्त्रियों का उचित स्थान क्या है। फिर भी इसके प्रभाव रोचक हैं। उदाहरण के लिए मत्ती 19:10-12 का अंश लीजिए, जहाँ यीशु अपने राज्य में अविवाहित व्यक्ति के लिए एक स्थान की घोषणा करते हैं।

> [मत्ती 19:10-12] "उसके चेले उससे कहते हैं: यदि पुरुष का स्त्री के साथ ऐसा संबंध है, तो विवाह करना उचित नहीं। परन्तु उसने उनसे कहा: सब यह वचन ग्रहण नहीं करते, केवल वे, जिन्हें यह दिया गया है; क्योंकि

> कुछ नपुंसक ऐसे हैं, जो माता के गर्भ ही से ऐसे जन्मे; और कुछ नपुंसक ऐसे हैं, जिन्हें मनुष्यों ने नपुंसक बनाया; और कुछ नपुंसक ऐसे हैं, जिन्होंने स्वर्ग के राज्य के लिए अपने आप को नपुंसक बनाया। जो इसे ग्रहण कर सकता है, वह ग्रहण करे।" (जर्मन एल्बरफ़ेल्डर बाइबल से अनूदित)

पहली दृष्टि में यह कोई बहुत क्रांतिकारी धारणा नहीं लगती, जब तक हम इसे इसके ऐतिहासिक संदर्भ में न देखें। यीशु के समय के यहूदी शिक्षक मानते थे कि उत्पत्ति 1:28 यह आज्ञा देता है कि सब शारीरिक रूप से स्वस्थ मनुष्य विवाह करें और संतान उत्पन्न करें। **स्वेच्छा से अविवाहित रहना कोई वैध विकल्प नहीं था।** वास्तव में रब्बी अक्सर नपुंसकों (खोजों) को परमेश्वर का अपमान मानते थे। इसके विपरीत यीशु ने सिखाया कि परमेश्वर के राज्य के लिए अविवाहित रहना वैध है। यह पाठ इस बात का यीशु का औचित्य हो सकता है कि वे स्वयं अविवाहित क्यों रहे। इस शिक्षा का यीशु की सेवकाई में स्त्रियों पर गहरा प्रभाव पड़ा। **इसका अर्थ था कि उनके पास इस जीवन में पत्नी या माता होने के अतिरिक्त कुछ और होने की संभावना थी।** इस प्रकार यहाँ हम यहूदी धर्म से एक क्रांतिकारी विचलन देखते हैं, क्योंकि यहूदी धर्म में कहा जाता था कि स्त्री का स्थान केवल घर में ही होना चाहिए। उसके पास किसी प्रसिद्ध रब्बी की शिष्या बनने या आराधनालय में आराधना की अगुवाई करने के लिए प्रशिक्षित होने की कोई संभावना नहीं थी, मंदिर में याजिका के रूप में सेवा करने की तो बात ही क्या।

मार्था और मरियम

लूका 10:38-42 में हम जानते हैं कि यीशु ऐसे यहूदी दृष्टिकोणों के विषय में क्या सोचते थे।

> [लूका 10:38-42] "जब वे आगे बढ़े, तो वह एक गाँव में आया; और मार्था नाम की एक स्त्री ने उसे अपने घर में ठहराया। और उसकी एक बहन थी, जिसका नाम मरियम था; वह भी यीशु के पाँवों के पास बैठकर उसका वचन सुनती रही। परन्तु मार्था बहुत सेवा-टहल में व्यस्त थी; वह पास आकर कहने लगी: हे प्रभु, क्या तुझे कुछ चिंता नहीं कि मेरी बहन ने मुझे सेवा करने के लिए अकेला छोड़ दिया है? सो उससे कह कि मेरी सहायता करे। परन्तु यीशु ने उत्तर देकर उससे कहा: मार्था, मार्था! तू बहुत सी बातों के लिए चिंतित और व्याकुल है; परन्तु एक बात आवश्यक है। क्योंकि मरियम ने उस उत्तम भाग को चुन लिया है, जो उससे छीना न जाएगा।" (जर्मन एल्बरफ़ेल्डर बाइबल से अनूदित)

यहाँ हम बिल्कुल स्पष्ट रूप से विरोधाभासों की एक कहानी देखते हैं। मार्था पारंपरिक यहूदी मेज़बान की भूमिका निभाती है, जबकि मरियम ध्यान से सुनने वाली शिष्या को दर्शाती है। "पाँवों के पास बैठना" (10:39) अभिव्यक्ति का प्रयोग अक्सर एक पारिभाषिक अभिव्यक्ति के रूप में होता है, जिसका अर्थ है किसी का शिष्य होना, और संभवतः यहाँ इसका यही अर्थ है। जब मार्था इस बात पर चिढ़ती है कि मरियम रसोई में हाथ नहीं बँटा रही, और यीशु को भी इसलिए उलाहना देती है कि वे इसके विरुद्ध कुछ नहीं करते, तो कहानी एक काफ़ी अप्रत्याशित मोड़ लेती है। यीशु मरियम को आतिथ्य-समिति में नहीं भेजते, बल्कि संकेत करते हैं कि मरियम ने वह उत्तम भाग चुना है, जो उससे छीना न जाएगा। **उसे यीशु की मेज़बान बनने की अपेक्षा उनकी शिष्या बनने का अधिकार, बल्कि उससे भी ऊँचा दायित्व है।** यह यीशु की अन्यत्र दी गई इस शिक्षा से मेल खाता है कि अपना क्रूस उठाकर यीशु के पीछे चलने से बढ़कर किसी बात की प्राथमिकता नहीं है। परन्तु इसे स्त्रियों पर लागू करना यहूदी मंडलियों में निश्चित रूप से अस्वीकार्य माना जाता।

स्त्री शिष्याएँ

लूका 8:1-3 से हम जानते हैं कि यीशु के साथ यात्रा करने वाले दल में स्त्रियाँ भी थीं – यह तथ्य अपने आप में अपमानजनक माना जाता, क्योंकि संभवतः वे उनके चेलों की पत्नियाँ नहीं थीं।

> [लूका 8:1-3] "इसके बाद ऐसा हुआ कि वह नगर-नगर और गाँव-गाँव प्रचार करता और परमेश्वर के राज्य का सुसमाचार सुनाता हुआ फिरने लगा। और वे बारह उसके साथ थे, और कुछ स्त्रियाँ भी, जो दुष्ट आत्माओं और बीमारियों से चंगी की गई थीं: मरियम, जो मगदलीनी कहलाती थी, जिसमें से सात दुष्टात्माएँ निकली थीं, और हेरोदेस के भण्डारी खुज़ा की पत्नी योअन्ना, और सूसन्नाह, और बहुत सी दूसरी स्त्रियाँ, जो अपनी संपत्ति से उसकी सेवा करती थीं।" (जर्मन एल्बरफ़ेल्डर बाइबल से अनूदित)

संभव है कि यीशु को उपहास में "पापियों का मित्र" इसीलिए कहा जाता था कि उन्होंने स्त्रियों और दूसरे अधिकारहीन समूहों को अपने समुदाय में स्वतंत्र और समान पहुँच दी। लूका 8:1-3 में हम यह भी देखते हैं कि ये स्त्रियाँ प्रत्यक्षतः समुदाय में ऐसे कार्य करती थीं, जिन्हें बाद में सेवकों और सेविकाओं (डीकनों) ने सँभाला – वे समुदाय की भौतिक आवश्यकताओं और कल्याण का प्रबंध करती थीं।

शारीरिक और आत्मिक परिवार

शारीरिक परिवार की तुलना में विश्वास के परिवार के विषय में यीशु की शिक्षा के महत्व को बढ़ा-चढ़ाकर आँकना कठिन है। मरकुस 3:31-35 और उसके समानांतर पाठों जैसे पाठों से स्पष्ट है कि यीशु अपने समुदाय में स्थान का दावा करने का आधार विश्वास को मानते थे, वंश को नहीं।

> [मरकुस 3:31-35] "और उसकी माता और उसके भाई आते हैं; और बाहर खड़े होकर उन्होंने उसके पास संदेश भेजकर उसे बुलवाया। और भीड़ उसके चारों ओर बैठी थी; और वे उससे कहते हैं: देख, तेरी माता और तेरे भाई बाहर तुझे ढूँढ़ रहे हैं। उसने उन्हें उत्तर दिया और कहता है: मेरी माता और मेरे भाई कौन हैं? और उसने उन पर, जो उसके चारों ओर घेरे में बैठे थे, दृष्टि डाली और कहता है: देखो, मेरी माता और मेरे भाई; क्योंकि जो कोई परमेश्वर की इच्छा पर चले, वही मेरा भाई और मेरी बहन और मेरी माता है।" (जर्मन एल्बरफ़ेल्डर बाइबल से अनूदित)

वास्तव में मरकुस 3:21 और आगे (तुलना करें यूहन्ना 7:5) संकेत देता है कि यीशु के साथ शारीरिक संबंध उन्हें समझने में वास्तव में ठोकर का कारण बन सकते थे। इसके अतिरिक्त मरकुस 10:29-30, लूका 12:49-53 और उसके समानांतर स्थान, तथा लूका 9:57-62 जैसे पाठ स्पष्ट करते हैं कि यीशु के लिए शारीरिक परिवार नहीं, बल्कि विश्वास का परिवार ही परमेश्वर के राज्य के भीतर संबंधों की मूल इकाई माना जाना चाहिए। निश्चय ही, यदि कोई शारीरिक परिवार (जैसे मरियम, मार्था और लाज़र) मसीही था, तो शारीरिक परिवार और विश्वास का परिवार एक साथ खड़े रह सकते थे। परन्तु यदि शारीरिक परिवार यीशु के प्रति वफ़ादारी के प्रश्न पर बँटा हुआ था और विश्वासियों की देह की सेवा करने के बजाय उसे बाँटना चाहता था, तो विश्वास के परिवार की प्राथमिकता को ही वरीयता मिलनी चाहिए। मरकुस 3:31-35 का अर्थ इससे कम कुछ नहीं कि विश्वास के अपने भाई-बहन ही प्राथमिक परिवार हैं, जिसके प्रति सबसे पहले वफ़ादार रहना है। यदि "या तो यह, या वह" की स्थिति उत्पन्न होती, तो स्पष्ट है कि यीशु की वफ़ादारी कहाँ थी और वे अपने चेलों से कहाँ उसकी अपेक्षा करते थे। यह मनोवृत्ति कुछ कम मात्रा में रब्बियों और उनके शिष्यों में भी मिलती है, जहाँ कभी-कभी कहा जाता था कि शिष्य की पहली

वफ़ादारी अपने शिक्षक के प्रति है, "जो उसे आने वाले संसार में ले आया", अपने माता-पिता से बढ़कर, "जो उसे संसार में लाए"। परन्तु यीशु ने इस सिद्धांत को अधिक क्रांतिकारी और गहन रूप से लागू किया (तुलना करें लूका 11:27-28; 12:49-53)। मसीह में हमारे संबंधों के लिए इसका जो अर्थ है, उस सब को कलीसिया ने अभी तक आत्मसात नहीं किया है।

कुएँ पर सामरी स्त्री

अपने विषय में किसी स्त्री की गवाही के मूल्य पर यीशु के विचार का एक प्रमाण यूहन्ना 4 में प्रसंगवश मिलता है। कुएँ पर स्त्री की कहानी इतनी प्रसिद्ध है कि उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं, परन्तु इस कहानी की कई बातें स्त्रियों के प्रति यीशु की मनोवृत्ति की ओर संकेत करती हैं। पहली बात, यहूदी शिक्षक इस पर ज़ोर देते थे कि यहूदी पुरुष सार्वजनिक स्थानों पर स्त्रियों से, विशेषकर पराई स्त्रियों से, बहुत कम या बिल्कुल बात न करें। यह बात "बुरी प्रतिष्ठा" वाली या "पराए मूल" की स्त्रियों पर और भी अधिक लागू होती थी। रब्बियों की दृष्टि में सामरी स्त्रियाँ "माता के गर्भ ही से रजस्वला" मानी जाती थीं, अर्थात् सदा अशुद्ध, अछूत, बहिष्कृत। इसलिए चेलों की दृष्टि में यीशु का कुएँ पर इस स्त्री से कोई बात करना उचित नहीं था। परन्तु यीशु न केवल उससे बात करते हैं, बल्कि उसे अशुद्ध मानकर व्यवहार करने से इनकार करते हैं और उसे पूरे चौथे सुसमाचार की सबसे महत्वपूर्ण धर्मवैज्ञानिक चर्चाओं में से एक में सम्मिलित करते हैं। **यह संकेत देता है कि उस जैसी स्त्री भी धर्मवैज्ञानिक जानकारी पाने के योग्य, और वास्तव में शिष्यता के लिए योग्य उम्मीदवार थी।** दूसरी बात, चौथा सुसमाचार-लेखक इस पर बल देता है कि जब यीशु के पुरुष चेले उस भोजन की खोज में लगे थे, जो तृप्त नहीं करता, **तब यह स्त्री संदेश सुनाने के लिए दूसरों के पास गई। इससे बहुत से लोग उस भोजन के विषय में सुनने के लिए यीशु के पास आए, जो अनंत जीवन देता है** (4:39)। हो सकता है कि 4:37-38 का दृष्टांत यह संकेत देना चाहता हो कि यह स्त्री बोने वालों या काटने वालों में से एक है। तब चौथा सुसमाचार-लेखक सामरी स्त्री को ऐसे व्यक्ति के रूप में देखता है, जो शिष्य की भूमिका को ठीक-ठीक जीकर दिखाती है – बारहों की लज्जा के लिए। इसी प्रकार की, यद्यपि अधिक स्पष्ट, बात यीशु द्वारा मरियम मगदलीनी को दिया गया यह कार्य है कि वह पुनरुत्थान की पहली गवाह बनकर "प्रेरितों की प्रेरित" बने (यूहन्ना 20:17-18)।

यीशु और शुद्धता की व्यवस्थाएँ

यह भी विशेष महत्व की बात है कि यीशु शुद्ध और अशुद्ध से संबंधित पुराने नियम की व्यवस्थाओं को मौन रूप से अपने और अपने अनुयायियों के लिए बाध्यकारी नहीं मानते। इसलिए वे किसी शव को छूने (लूका 7:15), किसी पापिनी स्त्री को छूने (लूका 7:36 और आगे) या लहू बहने के रोग वाली स्त्री को छूने (मरकुस 5:27 और आगे) को अशुद्ध करने वाला नहीं मानते। वास्तव में मरकुस 7:1 और आगे स्पष्ट रूप से कहता है कि यीशु ने सब भोजन-वस्तुओं को शुद्ध ठहराया (7:19ख), और वह भी इस सिद्धांत के आधार पर कि केवल वही जो मनुष्य के भीतर से बाहर निकलता है उसे अशुद्ध कर सकता है, न कि वह जो उसके भीतर जाता है या उसे छूता है (7:15)।

प्रभुता करना बनाम सेवा करना

एक और पाठ, जो स्त्रियों से संबंधित है – शारीरिक परिवार के साथ उनके संबंधों में भी और विश्वास के परिवार के साथ भी – लूका 22:24-30 है। यहाँ यीशु परिभाषित करते हैं कि बारहों को उनके अनुयायियों पर किस प्रकार का नेतृत्व या अगुवाई करनी है। वे स्पष्ट करते हैं कि उन्हें अन्यजातियों जैसा नहीं होना है, जो लोगों पर प्रभुता करते हैं,

बल्कि उन्हें यीशु के उदाहरण का अनुसरण करना है और सबके सेवक बनना है। **स्पष्ट है कि यीशु के लिए प्रधान होने का अर्थ सर्वोच्च सेवक होना है – इसमें अधिक ज़िम्मेदारी की माँग है, अधिक विशेषाधिकारों की नहीं।** इसका यह अर्थ नहीं कि उनके पास शिक्षा देने, प्रचार करने, चंगा करने का अधिकार नहीं है या वे उसका प्रयोग नहीं कर सकते। **परन्तु इसका अर्थ यह है कि परमेश्वर के राज्य में अगुवाई के पारंपरिक पितृसत्तात्मक मॉडल का सुधार होना चाहिए। अपने पुनरुत्थान से पहले और बाद में भी बारह पुरुषों का यीशु द्वारा चुना जाना और उन्हें काम सौंपना यह स्पष्ट करता है कि यीशु को अगुवाई की पारंपरिक धारणा को अस्वीकार करने से नहीं, बल्कि उसे नए सिरे से व्यवस्थित करने से सरोकार था।** परमेश्वर के राज्य में इस धारणा का जो भी अर्थ रहा हो, सुसमाचार-लेखकों ने इसे स्पष्ट रूप से इस अर्थ में नहीं समझा कि स्त्रियाँ शुभ संदेश की घोषणा नहीं कर सकतीं (यूहन्ना 20:17-18) या कलीसिया के महत्वपूर्ण पुरुष सदस्यों को शिक्षा भी नहीं दे सकतीं (प्रेरितों के काम 18:24-26)।

यीशु और तलाक़

चर्चा के इस बिंदु तक हमने जो कहा है, वह कहानी का केवल एक पहलू है। **दूसरा पहलू यीशु की इस चिंता के विषय में बताता है कि पारंपरिक शारीरिक पारिवारिक संरचना को सुदृढ़ किया जाए और उसे स्त्रियों के लिए अधिक न्यायपूर्ण बनाया जाए।** विवाह, परिवार और तलाक़ के विषय में यीशु की शिक्षाएँ इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं। **उदाहरण के लिए, मत्ती 5:27 और आगे में यीशु व्यभिचार के निषेध को स्पष्ट रूप से और कड़ा करते हैं। उसमें केवल शरीर के कार्य ही नहीं, बल्कि हृदय का झुकाव भी सम्मिलित होना चाहिए।** इसके अतिरिक्त मत्ती 19 में (तुलना करें मरकुस 10) यीशु तलाक़ के विषय में बहुत कठोर दृष्टिकोण अपनाते हैं। वास्तव में बहुत से विद्वान कहेंगे कि उनका मत "कोई तलाक़ नहीं" है, सिवाय उस स्थिति के जब विवाह आरंभ से ही अवैध था (जैसे निकट संबंधियों के बीच विवाह के मामले में)। यीशु ने तलाक़ के विरुद्ध कठोर दृष्टिकोण अपनाया, यह मत्ती 19:10 में चेलों के उत्तर से स्पष्ट होता है। वे भली-भाँति जानते थे कि कुछ रब्बियों ने कहा था कि केवल व्यभिचार की स्थिति में ही तलाक़ लेना चाहिए। यह संदिग्ध है कि यदि चेले यीशु को इस प्रकार समझते कि वे बस पारंपरिक यहूदी बहस के एक पक्ष में खड़े हैं, तो वे ऐसी प्रतिक्रिया करते। मरकुस और लूका के सुसमाचारों में भी तलाक़ के कोई स्वीकार्य कारण नहीं बताए गए हैं। निश्चय ही इन सुसमाचारों को पाने वाले पहले श्रोता समझ गए होंगे कि यीशु "कोई तलाक़ नहीं" की शिक्षा देते थे। यीशु के लिए तलाक़ व्यभिचार है, और पुनर्विवाह भी, क्योंकि परमेश्वर की दृष्टि में उन दोनों का बंधन, जिन्हें परमेश्वर ने जोड़ा है, अटूट है, संभवतः मृत्यु को छोड़कर (मत्ती 19:9; मरकुस 10:11-12; लूका 16:18)। मत्ती 19:8-9 में **यीशु अपनी स्थिति की तुलना मूसा की स्थिति से करते हुए उसका अंतर दिखाते हैं**। मूसा ने मन की कठोरता के कारण तलाक़ की अनुमति दी, परन्तु यीशु ने अब इस पर ज़ोर दिया कि परमेश्वर की मूल सृष्टि-व्यवस्था और उसका मूल उद्देश्य बनाए रखा जाए, क्योंकि वे नई सृष्टि का आरंभ कर रहे हैं। **यह शिक्षा चाहे कितनी ही कठिन या विवादित रही हो, स्त्रियों के लिए इसका सामान्य प्रभाव यह था कि पत्नी के रूप में अपनी भूमिका में उन्हें कहीं अधिक सुरक्षा मिली।** कुछ रब्बियों ने तो यहाँ तक कहा था कि यदि किसी पुरुष को अपनी पत्नी से अधिक सुंदर स्त्री मिल जाए, या उसकी वर्तमान पत्नी नाश्ता जला दे, तो वह तलाक़ देकर दोबारा विवाह करने के लिए स्वतंत्र है। यीशु के समुदाय में ऐसा नहीं था। स्त्रियाँ निश्चिंत हो सकती थीं कि मसीही समुदाय में ऐसी कोई सनक तलाक़ का कारण नहीं हो सकती। इसलिए भले ही मत्ती 19:9 (5:32) व्यभिचार के कारण तलाक़ की अनुमति देता हो (जो असंभाव्य प्रतीत होता है), फिर भी यीशु ने तलाक़ देने की पुरुषों की स्वतंत्रता को काफ़ी सीमित कर दिया था (पहली सदी की यहूदी संस्कृति में केवल पुरुष ही तलाक़ दे सकते थे)।

यूहन्ना 7:53-8:11 भी स्पष्ट करता है कि यीशु दोहरे मापदंड को सहन नहीं करते थे। यहाँ प्रश्न उठता है: वह व्यभिचारी पुरुष कहाँ है, जो उसी कार्य करते हुए रंगे हाथों पकड़ा गया था? स्पष्ट है कि इस मामले में इन यहूदी प्राचीनों ने स्त्री के पाप को पुरुष के पाप से अधिक गंभीरता से लिया। यीशु न्याय की ऐसी चुनिंदा और पक्षपातपूर्ण कार्यवाही में सहभागी नहीं हुए। **वे स्त्री के पाप की अनदेखी नहीं करते, परन्तु उसे दोषी भी नहीं ठहराते। उनका वास्तविक दंड-निर्णय उस व्यवस्था पर पड़ता है, जो समाज के 'कमज़ोर' सदस्यों के साथ भेदभाव करती है।** बाद में वे उन शास्त्रियों की आलोचना करते हैं, जो असहाय विधवाओं से उनकी थोड़ी-सी संपत्ति भी ठग लेते हैं (मरकुस 12:40 और समानांतर पाठ)। यीशु को इस बात से भी गहरी पीड़ा थी कि वृद्ध माता-पिता को उनके अपने बच्चे धर्मपरायणता के बहाने उनके अधिकार से वंचित कर देते थे (मरकुस 7:9-13)। हम यह भी जानते हैं कि यीशु की सेवकाई में बच्चों का विशेष स्थान था। चेलों के विरोध के बावजूद उन्होंने उनके अपने पास आने के अधिकार पर ज़ोर दिया (मरकुस 10:13 और आगे)। यीशु को उन स्त्रियों पर तरस आया, जिनके प्रियजन खो गए थे (लूका 7:11 और आगे; यूहन्ना 11), जिनके प्रियजन बीमार थे (मरकुस 7:24 और आगे) या जिनकी विशेष समस्याएँ थीं (लूका 8:1-3)। उनके साथ उनकी संगति (यूहन्ना 12; लूका 10) और कड़वे अंत तक (बारहों से भी बढ़कर) उनके प्रति उनकी विश्वासयोग्यता यीशु और उन लोगों के बीच एक विशेष संबंध की ओर संकेत करती है, जिनके साथ कुछ पुरुष चेले संभवतः चेलों में सबसे छोटों जैसा व्यवहार करते थे, जिनकी बात पर भरोसा तक नहीं किया जा सकता था (लूका 24:11)। **यह सब यहूदी धर्म में स्त्रियों की कमज़ोर स्थिति की तुलना में उन भूमिकाओं के एक बहुत उल्लेखनीय उत्थान की ओर संकेत करता है, जो स्त्रियाँ यीशु के समुदाय में निभा सकती थीं।** वहाँ (यहूदी धर्म में) उनकी मासिक अशुद्धता के कारण उन्हें आराधनालय में तोराह पढ़ने या संचालक परिषद का सदस्य होने की अनुमति नहीं थी।

यीशु के वचनों और कार्यों का हमारा अध्ययन हमें इस निष्कर्ष तक पहुँचाता है कि यीशु बहुत सी बातों में, यद्यपि सब बातों में नहीं, अपने यहूदी समकालीनों से भिन्न थे। यह और भी उल्लेखनीय है जब हम देखते हैं कि, जहाँ तक हम जानते हैं, यीशु ने अपने निकटतम यहूदी परिवेश को कभी लंबे समय के लिए नहीं छोड़ा, और – जो इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है – कि उन्होंने अपना मिशन विशेष रूप से अपने यहूदी संगी नागरिकों की ओर लक्षित किया।

तलाक़ को यीशु का कठोर अस्वीकार उनके समय के लगभग हर व्यक्ति को ठेस पहुँचाता। इसके अतिरिक्त यीशु का यह मत कि अविवाहित रहना, उनके लिए जिन्हें यह दिया गया है, एक वैध और असामान्य नहीं बल्कि सामान्य बुलाहट है, रोमी साम्राज्य के विभिन्न भागों में पुरुष के विवाह करने और संतान उत्पन्न करने के कर्तव्य के विषय में प्रचलित विचारों के विरुद्ध था, परन्तु कहीं भी उतना नहीं जितना उनकी जन्मभूमि फ़िलिस्तीन में। मैंने सुझाव दिया कि यही शिक्षा थी, जिसने स्त्रियों के लिए यीशु के समुदाय में पत्नी और माता की भूमिका के अतिरिक्त दूसरी भूमिकाएँ निभाना भी संभव किया। यह बात कि यीशु ने स्त्रियों को, विशेषकर यौन मामलों में, विभिन्न रूपों में "बलि का बकरा" बनाए जाने का समर्थन नहीं किया, उन्हें दूसरे रब्बियों के साथ संघर्ष में ले आई, यद्यपि निस्संदेह बहुत से अन्यजाति भी यह मानते थे कि "दोहरे मापदंड" को अस्वीकार करके यीशु समानता को बहुत आगे ले गए। **इसके अतिरिक्त, विभिन्न यहूदी लेखकों के विपरीत, यीशु के होंठों पर हमें पुरुषों की तुलना में स्त्रियों के स्वभाव, योग्यताओं और धार्मिक क्षमता के विषय में कोई नकारात्मक टिप्पणी नहीं मिलती।** यह मानने का भी कारण है कि किसी स्त्री की गवाही के मूल्य और प्रमाण-बल का यीशु का आकलन उनके अधिकांश, यदि सब नहीं तो, समकालीनों से ऊँचा था (तुलना करें यूहन्ना 4:27-42)। यीशु की यह शिक्षा कि पुरुषों और स्त्रियों दोनों के लिए विश्वास के परिवार के दावों को शारीरिक परिवार के दावों पर प्राथमिकता है (तुलना करें मरकुस

3:31-35; 10:29-30), कुछ ऐसी परिस्थितियों तक भी ले गई, जिन्हें यहूदी और अन्यजाति दोनों आपत्तिजनक मानते। उदाहरण के लिए, कौन पति (यहूदी हो या अन्यजाति) अपनी पत्नी को ख़ुशी से घर और परिवार छोड़कर एक यहूदी घुमंतू प्रचारक की अनुयायी बनने देता? फिर भी लूका 8:3 संभवतः संकेत देता है कि खुज़ा की पत्नी योअन्ना ने ऐसा ही किया था। **परन्तु इस शिक्षा ने यीशु को पारंपरिक पारिवारिक संरचना को, या – जैसा प्रतीत होता है – उस पितृसत्तात्मक ढाँचे को, जो उस समय की सब विभिन्न भूमध्यसागरीय संस्कृतियों में किसी न किसी हद तक विद्यमान था, सिरे से अस्वीकार करने तक नहीं पहुँचाया।** कुरबान (Korban), माता-पिता के आदर, तलाक़ और बच्चों के विषय में यीशु की शिक्षाएँ स्पष्ट करती हैं कि वे पारंपरिक पारिवारिक संरचना को अस्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। यदि मत्ती 5:27-32 और यूहन्ना 7:53-8:11 कोई संकेत देते हैं, तो यह कि यीशु ने पति और पुरुष अगुवों की इस ज़िम्मेदारी की पुष्टि की कि वे समुदाय के लिए नैतिक आदर्श हों। **अपने नए समुदाय के अगुवों के रूप में यीशु का बारह पुरुषों को चुनना भी यह अनुमान कराता है कि वे जिस पितृसत्तात्मक ढाँचे में काम कर रहे थे, उसे अस्वीकार करने के बजाय उसमें सुधार करने का प्रयास कर रहे थे।**

यीशु के कुछ वचन और कार्य, जैसे अशुद्धता की व्यवस्थाओं के विषय में उनकी शिक्षा, सब्त के दिन एक स्त्री को चंगा करना, और सार्वजनिक रूप से एक पराई स्त्री से बातचीत करने की उनकी तत्परता, यद्यपि उनके यहूदी संगी नागरिकों के लिए स्पष्ट रूप से आपत्तिजनक थे, **परन्तु यीशु के अपने देश के संदर्भ के बाहर संभवतः अधिक हलचल न मचाते।** इसी प्रकार धार्मिक शिक्षा पाने के और किसी धार्मिक अगुवे की शिष्या बनने के स्त्री के अधिकार के प्रति यीशु का दृष्टिकोण यहूदियों के लिए निस्संदेह चौंकाने वाला था, परन्तु उस समय के बहुत से रोमियों या यूनानियों को क्रांतिकारी न लगता।

स्त्रियों और उनकी भूमिकाओं के विषय में यीशु के विचार उनके समय की किसी श्रेणी में नहीं बैठते। इन मामलों में वे न तो कुमरान समुदाय के सदस्य थे, न कोई पारंपरिक रब्बी, यद्यपि दोनों समूहों के साथ उनकी कुछ बातें समान थीं। काल्पनिक और वास्तविक दोनों प्रकार की कहानियों में स्त्रियों को अपने अनुयायियों के लिए विश्वास के आदर्श के रूप में प्रस्तुत करना, और माता-पिता के आदर के विषय में उनकी शिक्षा, रब्बीय साहित्य में बिना उदाहरण के नहीं हैं। परमेश्वर के राज्य के आगमन को ध्यान में रखते हुए पुरुषों और स्त्रियों से परमेश्वर के प्रति क्रांतिकारी समर्पण का उनका आह्वान यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले और कुमरान की शिक्षाओं से कुछ समानता रखता है। फिर भी कुल मिलाकर, और विशेष रूप से उनके यहूदी संदर्भ को देखते हुए, **यीशु अपने लोगों में स्त्रियों और उनकी भूमिकाओं के विषय में प्रचलित विचारों के एक अनोखे और कभी-कभी क्रांतिकारी सुधारक प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसा प्रतीत होता है कि जब सुसमाचार-लेखकों ने अपने सुसमाचार लिखे, तब स्त्रियों के प्रति एक नए और अधिक खुले दृष्टिकोण के पक्ष में अभी समर्थन जुटाना बाक़ी था।** शायद यही ठीक कारण है कि तीसरा और चौथा सुसमाचार-लेखक विभिन्न स्त्रियों को अपने श्रोताओं के लिए धार्मिक आदर्शों के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। **तो स्त्रियों और उनकी भूमिकाओं के विषय में इन नए दृष्टिकोणों का उन स्त्रियों पर क्या प्रभाव पड़ा, जो यीशु के समुदाय में सम्मिलित हुईं? पद और भूमिकाओं के विषय में, यहूदी धर्म ने उन्हें जो दिया उसकी तुलना में, यीशु के समुदाय ने स्त्रियों को क्या दिया?**

सबसे पहले, न केवल सुसमाचारों में, बल्कि प्रेरितों के काम और पत्रियों में भी (जैसे रोमियों 16) स्पष्ट होता है कि स्त्रियों पर मसीही संदेश का प्रभाव काफ़ी था। संभव है कि यीशु की शिक्षाओं ने स्त्रियों को आंशिक रूप से उन नई भूमिकाओं और उस समान पद के कारण आकर्षित किया, जो उन्हें मसीही समुदाय में दिया गया। यूनान और

रोम में बहुत से पंथ थे, जो केवल पुरुषों के लिए आरक्षित थे या स्त्रियों को अधिक से अधिक बहुत सीमित रूप से भाग लेने देते थे। इसके अतिरिक्त यह समझना आसान है कि आराधनालय-समुदाय के किनारे पर खड़ी स्त्रियाँ मसीही क्यों बन गईं। यहूदी धर्म स्त्री धर्मांतरितों (प्रोसेलाइटों) को अधिक से अधिक एक सीमित स्थान देता था, क्योंकि उन्हें उन रब्बीय प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता था, जो धार्मिक कार्यों में उनकी सहभागिता को सीमित करते थे। जहाँ स्त्रियाँ न तो उस न्यूनतम संख्या (minyan) में गिनी जाती थीं, जो किसी आराधनालय की स्थापना के लिए आवश्यक थी, और न यहूदी वाचा का चिह्न पा सकती थीं, वहीं मसीही कलीसिया में ये प्रतिबंध नहीं थे। **इसकी आवश्यक और पर्याप्त व्याख्या कि इन प्रश्नों में मसीहियत अपनी धार्मिक माता, यहूदी धर्म, से क्यों भिन्न थी, यह है कि यीशु ने उन बाइबलीय और रब्बीय दोनों परंपराओं को तोड़ा, जो धार्मिक व्यवहार में स्त्री की भूमिका को सीमित करती थीं, और उन्होंने स्त्री के मूल्य या उसकी गवाही को कम आँकने के प्रयासों को ठुकरा दिया।** इस प्रकार यीशु के समुदाय ने, ईस्टर से पहले भी और बाद में भी, स्त्रियों को पुरुषों के साथ (कुछ अन्यजातीय पंथों की तरह पुरुषों से अलग नहीं) विश्वास के परिवार में पूरी तरह भाग लेने का समान अधिकार दिया। यह ऐसा अधिकार था, जो स्त्रियों को समकालीन यहूदी धर्म में या बहुत से अन्यजातीय पंथों में नहीं था। शिष्यता की प्राथमिकताओं के विषय में यीशु की शिक्षाएँ, स्त्रियों को अपनी शिष्याओं और यात्रा-संगिनियों के रूप में स्वीकार करने की उनकी तत्परता (तुलना करें लूका 8:1-3; 10:38-42), और नपुंसकों के विषय में तथा इस विषय में उनकी शिक्षा कि क्या चीज़ किसी व्यक्ति को अशुद्ध करती है, ने प्रभावी रूप से इस बात का मार्ग तैयार किया कि स्त्रियाँ उनके समुदाय में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें। कोई भी यीशु पर विश्वास कर सकता था और उनके पीछे चल सकता था – उन्होंने अपने विश्वास के परिवार में प्रवेश के लिए किसी और शर्त पर ज़ोर नहीं दिया।

उन भूमिकाओं के संबंध में, जो स्त्रियाँ यीशु की कलीसिया में निभा सकती थीं और निभाती भी थीं, विशेष रूप से लूका हमें दिखाते हैं कि स्त्रियों ने बहुत से कार्य सँभाले, विशेषकर ईस्टर के बाद की कलीसिया में। तीसरा सुसमाचार-लेखक संकेत देता है (तुलना करें लूका 8:3; प्रेरितों के काम 9:36-42) कि स्त्रियाँ अक्सर बस अपनी पारंपरिक भूमिकाएँ – आतिथ्य या भौतिक सहायता की – फिर से अपना लेती थीं, यद्यपि अब यीशु की कलीसिया की सेवा में। ऐसी भूमिकाएँ तब तक स्वीकार्य थीं, जब तक वे किसी स्त्री को उस "एक आवश्यक बात" (लूका 10:38-42) को चुनने से या उसके विषय में और अधिक सीखने से नहीं रोकती थीं।

यद्यपि यीशु की शिक्षा और समुदाय को शायद यहूदी स्त्रियों की अपेक्षा अन्यजातीय स्त्रियों ने अधिक आसानी और स्वाभाविकता से अपनाया, फिर भी पद और भूमिकाओं के विषय में इसने अन्यजातीय स्त्रियों की अपेक्षा यहूदी स्त्रियों को अधिक दिया। एक यहूदी स्त्री के लिए किसी महान शिक्षक की शिष्या बनना, यीशु की यात्रा करने वाली अनुयायी बनना, "परमेश्वर के राज्य के लिए" अविवाहित रहना, या बच्चों के अतिरिक्त दूसरों के लिए भी विश्वास की शिक्षिका बनना – ये सब ऐसी संभावनाएँ थीं, जो यीशु के समुदाय में उसके प्रवेश से पहले विद्यमान नहीं थीं। फिर भी, मसीही विश्वास और समुदाय ने ग़ैर-यहूदी स्त्रियों को भी बहुत कुछ दिया। ऊपर बताए गए कार्यों के अतिरिक्त, पाप से छुटकारे का प्रस्ताव, एक नई आत्म-समझ और एक नए लक्ष्य के साथ जीवन आरंभ करने का प्रस्ताव, एक ऐसे समुदाय में सक्रिय रूप से भाग लेने का प्रस्ताव, जिसके स्वामी ने अपना मिशन विशेष रूप से दबे-कुचले लोगों की ओर लक्षित किया था – ये ऐसे प्रस्ताव थे, जो अन्यजातीय और यहूदी दोनों स्त्रियों के लिए बहुत आकर्षक थे। **यह नया पद और ये नई भूमिकाएँ, जिनमें से कुछ इन स्त्रियों को पहले उपलब्ध नहीं थीं, वे कारक हैं जो यीशु के समुदाय में स्त्रियों के आगमन की बाढ़ को समझाते हैं।**

सुसमाचारों में उभरने वाला एक और विषय स्त्रियों को यीशु के विषय में सत्य की विश्वसनीय गवाहों के रूप में प्रस्तुत करना है (जैसे यूहन्ना 4), और विशेष रूप से उनकी मृत्यु, उनके गाड़े जाने, उनकी ख़ाली क़ब्र और पुनर्जीवित के रूप में उनके प्रकट होने के विषय में। यद्यपि यह विवशता की बात रही हो, फिर भी यह अर्थपूर्ण है कि मसीही प्रचार (केरिग्मा) का एक निर्णायक भाग यीशु की स्त्री अनुयायियों की गवाही पर आधारित है। **यह सुसमाचार-लेखकों का श्रेय है कि वे इस तथ्य पर पर्दा डालने का प्रयास नहीं करते, बल्कि पहला सुसमाचार-लेखक, लूका, चौथा सुसमाचार-लेखक और संभवतः मरकुस इसे विभिन्न प्रकार से उभारते हैं।** विशेष उल्लेख योग्य वह ढंग है, जिससे लूका यीशु की स्त्री अनुयायियों की गवाही की वैधता को स्पष्ट करते हैं, यह दिखाकर कि प्रेरित पतरस ने उसकी पुष्टि की (तुलना करें लूका 24:1-10, 12)। यह भी उल्लेखनीय है कि चौथा सुसमाचार-लेखक मार्था के अंगीकार को एक प्रकार से अपने श्रोताओं के लिए आदर्श के रूप में प्रस्तुत करता है (तुलना करें यूहन्ना 11:27; 20:31)। इसके अतिरिक्त पुनरुत्थान के वृत्तांत, सुसमाचारों के दूसरे भागों की तरह, मसीही समुदाय पर स्त्रियों के प्रति यीशु के दृष्टिकोण के प्रभाव की गवाही देने की प्रवृत्ति रखते हैं, क्योंकि इन वृत्तांतों में और अन्यत्र भी स्त्रियाँ इस समुदाय में गवाहों और सहभागियों के रूप में सामने आती हैं।

सारांश

इस सामग्री की और खोज करने के लिए न समय है, न स्थान। इतना कहना पर्याप्त है कि यीशु ने अपनी सेवकाई में एक साथ दो काम किए, जिनका स्त्रियों पर नाटकीय प्रभाव पड़ा। एक ओर उन्होंने स्त्रियों के लिए अपने वचनों, कार्यों और अपनी सेवकाई में एक महत्वपूर्ण स्थान और पद पाना संभव किया, और साथ ही पूर्वाग्रहों और दोहरे मापदंडों से संघर्ष किया। इसका परिणाम यह हुआ कि विशेष रूप से यहूदी स्त्रियों को विश्वास के परिवार में नए धार्मिक अधिकार और कार्य मिले। दूसरी ओर उन्होंने ऐसे क़दम उठाए, जिन्होंने परिवार में स्त्रियों की पारंपरिक भूमिकाओं को सुदृढ़ किया। इसलिए "नारीवादी" यीशु या "परंपरावादी" यीशु वाले नए द्वंद्व को अस्वीकार करना होगा। **इन दोनों शब्दों में से कोई भी, और इन दोनों अतियों में से कोई भी, स्त्रियों के साथ यीशु के संबंध का उचित वर्णन नहीं करता।** जैसा बहुत से दूसरे क्षेत्रों में है, वैसे ही स्त्रियों के प्रति और उनके साथ यीशु की सेवकाई भी किसी सरल वर्गीकरण में नहीं बँधती। आज हमारे लिए अच्छा होगा कि हम उस स्वस्थ संतुलन को बनाए रखने का प्रयास करें, जिसकी घोषणा यीशु ने की और जिसे पौलुस ने आगे बढ़ाया। यदि कलीसिया या तो उस नई बात की अनदेखी करती है, जिसे यीशु ने आरंभ किया, या उस पुरानी बात की, जिसकी उन्होंने पुष्टि की, तो वह इस ख़तरे में है कि या तो शारीरिक परिवार को और अधिक खंडित कर दे, या उस आत्मा को दबा दे, जो परमेश्वर की स्त्रियों के जीवन में कार्य करता है।

परमेश्वर हमें इन दोनों ख़तरों से बचाए।

बेन विदरिंगटन III (Ben Witherington III) की कृपापूर्ण अनुमति से।

अंग्रेज़ी मूल: बेन विदरिंगटन III, "Women in the Ministry of Jesus", Ashland Theological Journal 17 (1984), पृ. 22–30।

ज़ोर (हाइलाइटिंग) जर्मन अनुवादक द्वारा दिया गया है।